26.4 शुक्ल युग : विशुद्ध आलोचना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी आलोचना के युग-पुरुष हैं। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में 'गद्य साहित्य का प्रसार' के द्वितीय उत्थान (संवत् 1950-1975) के अंतर्गत समालोचना पर विचार करते हुए शुक्लजी ने लिखा है, 'पर यह सब आलोचना बहिरंग बातों तक ही रही। भाषा के गुण-दोष, रस, अलंकार आदि की समीचीनता इन्हीं सब परम्परागत विषयों तक पहुँची। स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना जिसमें कवि की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती हैं, बहुत कम दिखाई पड़ी।' (पृ.492) आगे गद्य साहित्य के तृतीय उत्थान के अंतर्गत समालोचना के विकास पर लिखते हुए उन्होंने कवियों की 'अंतःप्रवृत्ति की छान-बीन' की बात फिर की है। (वही, पृ.562) शिष्टता और विनम्रता के नाते उन्होंने यह नहीं लिखा कि 'ऐसी आलोचना मैंने की है।' उन्होंने उत्तम पुरुष का प्रयोग बचाते हुए अपने विषय में केवल यह लिखा, 'इस इतिहास के लेखक ने तुलसी, सूर और जायसी पर विस्तृत समीक्षाएँ लिखीं जिसमें से प्रथम 'गोस्वामी तुलसीदास' के नाम से पुस्तकाकार छपी है, शेष दो क्रमशः 'भ्रमरगीत सार' और 'जायसी ग्रंथावली' में सम्मिलित हैं।' (वही, पृ.562) समालोचना विषयक अपनी धारणा बताकर शुक्लजी ने समालोचना विषयक अपनी विशेषता बता दी है। उन्हीं की गवाही पर कहा जा सकता है कि 'किसी कवि या पुस्तक के गुण-दोष या सूक्ष्म विशेषताएँ दिखाने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार करने की चाल हमारे यहाँ न थी।' (वही, पृ.526) और 'हमारे हिंदी-साहित्य में समालोचना पहले-पहल केवल गुण-दोष-दर्शन के रूप में प्रकट हुई है।' (वही, पृ.527)

गुण-दोष के कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंतःप्रवृत्ति की छानबीन की ओर तृतीय उत्थान में जो ध्यान दिया गया वह **समूचे भारतीय साहित्य-शास्त्र का आधुनिकीकरण था। यह कार्य पं.रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा द्वारा हुआ।** उनकी रचनाओं के कारण हिंदी की समालोचना ने नए युग में पर्दापण किया। हिंदी साहित्य की किसी एक विधा को कभी किसी एक साहित्यकार ने इतना अधिक नहीं प्रभावित किया था।

'कवि की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद' — यह वाक्यांश अपने-आपमें उस तत्परता, गंभीरता, प्रामाणिकता और प्रतिभा का संकेत नहीं देता जिनकी कि वह माँग करता है। शुक्लजी ने केवल साहित्य ही नहीं पढ़ा था, साहित्य के स्रोत जीवन को भी परखा और समझा था। उन्होंने अपने युग-बोध को कठिन परिश्रम से अर्जित किया। अपने समय तक पहुँची हुई ज्ञान-विज्ञान की सीमा-रेखा पर खड़े होकर जीवन और साहित्य को देखा-भाला। अपने युग के मुहावरे में साहित्य की व्याख्या की। इसीलिए शुक्लजी सच्चे अर्थों में आधुनिक एवं प्रगतिशील साहित्य-मर्मज्ञ और समालोचक हुए।

साहित्येतर ग्रंथ जितनी संख्या में पं.रामचन्द्र शुक्ल ने लिखे या अनूदित किए उतने अभी तक हिंदी के किसी अन्य समालोचक ने नहीं। लगभग 14 वर्ष की ही अवस्था में उन्होंने एडिसन के 'एस्से ऑन

Scanned by CamScanner

इमेजिनेशन' का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' नाम से किया था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने सर टी.माधवराव की पुस्तक 'माइनर हिंट्स' का अनुवाद 'राज्य प्रबंध शिक्षा' नाम से किया। मेगस्थनीज़ के 'भारत विवरण', 'राखालदास वन्द्योपाध्याय के बंगला उपन्यास 'शशांक' और एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' का पद्यबद्ध अनुवाद 'बुद्धचरित' नाम से किया। जो बात ध्यान देने की है वह यह कि प्रायः इन सभी अनूदित ग्रंथों की उन्होंने विस्तृत भूमिकाएँ लिखीं। शुक्लजी के विचारों का निर्माण करने में जर्मनी के जगद्विख्यात प्रणितत्ववेत्ता हैकल की पुस्तक 'रिडिल ऑफ़ दि यूनीवर्स' का बहुत योगदान है। इस पुस्तक का अनुवाद शुक्लजी ने 'विश्व प्रपंच' नाम से किया और 155 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका लिखी। इस भूमिका को पढने से इस बात का पता चलता है कि शुक्लजी ने भौतिक विज्ञान, दर्शन तथा मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया था। इसी आधार पर उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हुआ था। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है कि वे साहित्य की जागतिक व्याख्या करते हैं, अध्यात्म शब्द की काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई ज़रूरत नहीं समझते और अपने प्रिय कवि तुलसी को 'लोक-धर्म' का उद्घोषक कवि कहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि पं.रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि वैज्ञानिक, प्रगतिशील और इहलौकिक है।

शुक्लजी ने राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं पर भी विचार करते हुए शुद्ध राजनैतिक तथा आर्थिक निबंध लिखे हैं। 1903 या 1094 ई. में उन्होंने 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में 'व्हाट हैज़ इण्डिया टू डू' नामक निबंध लिखा था। 1917 ई. में 'लीडर' उन्होंने 'हिंदी एंड मुसलमान्स' नामक निबंध प्रकाशित कराया था। बाँकीपुर (पटना) से निकलने वाले 'एक्सप्रेस' में उन्होंने गांधीजी के असहयोग आंदोलन के आर्थिक पक्ष का विरोध करते हुए 1921 ई. में 'नॉन-कोआपरेशन एंड द नॉन-मर्कन्टाइल क्लासेज़' शीर्षक से एक निबंध लिखा था। शुक्लजी के जीवनी लेखक श्री चन्द्रशेखर शुक्ल ने लिखा है, 'राजनीतिक क्षेत्र में इस (लेख) की बरसों चर्चा रही।' (रा.च.शु, 315)

शुक्लजी ने 'हिंदी शब्द-सागर' का सम्पादन भी किया था। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' इसकी भूमिका के रूप में लिखा गया था। इस कोश में दिए गए 93,115 शब्दों पर शुक्लजी ने विचार किया, उनके प्रयोगों पर मनन करके उनका उपयुक्त एवं यथातथ अर्थ निश्चित किया होगा। शब्दों का प्रयोग करना एक बात है, किंतु उनका अर्थ समझाना, उनकी वैज्ञानिक विवेचना करना है। सम्पादक-मंडल में और भी लोग थे लेकिन कोश के प्रधान सम्पादक बाबू श्यामसुंदर दास ने सबसे अधिक श्रेय शुक्लजी को दिया है। (हिंदी शब्द-सागर, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृ.7)

पं.रामचन्द्र शुक्ल ने अनेक ऐसे शब्द गढे जो उनके आलोचना-कर्म को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके विचार से **कविता का उद्देश्य हृदय को लोक-सामान्य की भावभूमि पर पहुँचा देना है।** 'लोक-सामान्य' शब्द से शुक्लजी की साहित्य-संबंधी मूल धारणा लिपटी हुई है। डॉ.रामविलास शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का वही महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का है। उनके अनुसार, शुक्लजी ने 'बाह्य जगत और मानव जीवन की वास्तविकता के आधार पर नए साहित्य सिद्धांतों की स्थापना की और उनके आधार पर सामंती साहित्य का विरोध किया और देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परंपरा का समर्थन किया।' (आ.रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, भूमिका)

शुक्लजी ने व्यक्ति धर्म के स्थान पर 'लोक-धर्म' को श्रेयस्कर बताया। उन्होंने साहित्य में जीवन को और जीवन में साहित्य को प्रतिष्ठित किया। उन्होंने यह कार्य अत्यंत व्यवस्थित ढंग से किया। केवल व्यावहारिक समीक्षा में ही नहीं, काव्यशास्त्र-संबंधी विवेचन में भी उन्होंने अपने दृष्टिकोण से भाव, विभाव, रस की पुनर्व्याख्या की। इस पुनर्व्याख्या का आधार आधुनिक दृष्टिकोण है। भावों और मनोविकारों की व्याख्या वे विकासवादी पद्धति से करते हैं - भाववादी पद्धति से नहीं। शुक्लजी मानते हैं कि 'भाव मन की वेगयुक्त अवस्था-विशेष है।' शुक्लजी की विचारधारा में इस 'वेगयुक्त अवस्था' का बहुत महत्व है। इसके आधार पर उन्होंने काव्य का लक्ष्य निर्धारित किया है। शुक्लजी जिसे भाव कहते हैं उसमें बोध, अनुभूति और प्रवृत्ति तीनों मौजूद हैं। उन्होंने भाव की परिभाषा इस प्रकार की है - 'प्रत्यय बोध, अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के गूढ संश्लेष का नाम 'भाव' है।' (रस मीमांसा, पृ.135) इस संश्लेष को शुक्लजी ने जीवन और साहित्य का मानदण्ड बनाया है। वे मानते हैं कि भाव की प्रतिष्ठा से प्राणियों के कर्म-क्षेत्र का विस्तार बढ़ता है। चूँकि काव्य भी भावों को अभिव्यक्त करता है, इसलिए उससे भी कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। यही वह आधार है जिसपर आचार्य शुक्ल काव्य में लोक-मंगल के आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं, काव्य को सामाजिक चेतना के उत्तरदायित्व से युक्त करते हैं।

Scanned by CamScanner

शुक्लजी के विचार में काव्य के रसास्वादन का लक्ष्य आनंद नहीं 'भाव-योग' है। अर्थात् कविता के द्वारा मनुष्य हृदय की मुक्ति की साधना करता है। 'मुक्त हृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है।' (वही, पृ.6) यानी कविता का लक्ष्य मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि में लीन कर देना है। जिसे रस-दशा कहा जाता है उसके विषय में शुक्लजी का कहना है कि '...लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।' (वही, पृ.217) यानी कविता जीवन से पलायन नहीं है, बल्कि वह हमें जीवन में अधिक व्यापक पैमाने पर अधिक गहराई में उतारती है। अधिक अनुभूतिमय, अधिक बोधवान और अधिक कर्मण्य बनाती या कर्मण्य बनने की प्रेरणा देती है।

विभिन्न भावों की जो विवेचना शुक्लजी ने की है, उसमें उन्होंने अद्भुत पाण्डित्य, मौलिकता और पर्यवेक्षण का सबूत दिया है। उदाहरणस्वरूप करुणा और प्रेम विषयक विवेचन को रखा जा सकता है। उनके अनुसार, करुणा ही ऐसी भावना है जो मनुष्य को अंततः लोक-रक्षा की ओर उन्मुख करती है। करुणा के ही कारण काव्य लोक-सामान्य भावभूमि तक पहुँचता है। अतः करुणा सामाजिकता का मूल आधार है। शुक्लजी के अनुसार करुणा अपने से दूसरों के यानी संसार के वास्तविक सुख के साधन और दुःख की निवृत्ति की प्रवृत्ति को उत्पन्न करती है, इसलिए मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का संस्थापक मनोविकार है। (वही, पृ.48) शुक्लजी यह भी बताते हैं कि करुणा - अनुग्रह, दया कृपा से किस प्रकार भिन्न है, करुणा के वेग से व्यक्ति लोक-रक्षा में किस प्रकार तत्पर होता है।

प्रेम और करुणा संबंधी विवेचना भारतीय काव्यशास्त्र को शुक्लजी की देन है। उनकी इस विवेचना का प्रभाव उनके काव्य-चिंतन और उनकी व्यावहारिक समीक्षा पर अत्यंत व्यापक एवं गंभीर रूप से पड़ा है। करुणा का संबंध उन्होंने साधनावस्था से जोड़ा और प्रेम का सिद्धावस्था से। प्राचीन आचार्यों ने करुणा और प्रेम में वैसा भेद नहीं किया था, जैसा शुक्लजी ने। शुक्लजी के अनुसार, ये दोनों भाव मंगल का विधान करते हैं लेकिन करुणा की प्रवृत्ति रक्षा की ओर होती है जबकि प्रेम की प्रवृत्ति रंजन की ओर। करुणा की अभिव्यक्ति का पूरा अवकाश प्रबंध काव्यों में ही होता है, इसलिए शुक्लजी प्रबंध काव्यों के आग्रही हैं।

'प्रेम' का अवकाश करुणा द्वारा प्रेरित प्रयत्नों के सफल होने के बाद होता है। आदि-काव्य रामायण के कथानक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है : 'लोक के प्रति करुणा जब सफल हो जाती है, लोक जब पीड़ा और विघ्न-बाधा से मुक्त हो जाता है, तब राम-राज्य में जाकर लोक के प्रति प्रेम प्रवर्तन का, प्रजा के रंजन का, उसके अधिकाधिक सुख के विधान का अवकाश मिलता है।' (वही, पृ.54)

आनंद की सिद्धावस्था का चित्रण करने वाली रचनाओं का बीज भाव 'प्रेम' है। प्रेम के दो पक्ष हैं - रंजन और पालन। रंजन का संबंध शृंगार से है और पालन का वात्सल्य से। प्रेम के केवल शृंगार पक्ष पर ही बल देने को शुक्लजी ठीक नहीं समझते। सूरदास की कविता को शुक्लजी इसलिए पसंद करते हैं कि सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्होंने वात्सल्य का चित्रण भी किया है और उसे शृंगार से अधिक नहीं तो कम महत्व भी नहीं दिया है।

जगत् को शुक्लजी काव्य का मूल कारण मानते हैं। जगत् कल्पना, सौंदर्य, भावों या मनोविकारों के निर्माण का आधार है। जगत् को शुक्लजी 'विश्व-काव्य' तथा 'महाकाव्य' कहते हैं। मन क्या है? - इसका उत्तर देते हुए वे लिखते हैं, 'यही बाहर हँसता-खेलता, रोता-गाता, खिलता, मुरझाता जगत् भीतर भी है जिसे हम मन कहते हैं। जिस प्रकार यह जगत् रूपमय और गतिमय है उसी प्रकार मन भी। मन भी रूप-गति का संघात ही है।' (वही, पृ.24)

शुक्लजी के काव्य-चिंतन में काव्य और जीवन का भेद नहीं के बराबर है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हमें सृष्टि सौंदर्य के प्रत्यक्ष दर्शन में उसी प्रकार की रसानुभूति होती है जैसी रसानुभूति उत्तम काव्य के पारायण से होती है।

शुक्लजी ने माना है कि रूप-विधान तीन प्रकार के होते हैं - (1) प्रत्यक्ष रूप-विधान (2) स्मृत रूप-विधान (3) संभावित या कल्पित रूप-विधान। प्रत्यक्ष रूप-विधान के अंतर्गत तो शुक्लजी के परम-प्रिय विषय प्रकृति तथा मनुष्य का कर्म-कलाप आ जाता है तथा स्मृत रूप-विधान के अंतर्गत इतिहास। प्रकृति और इतिहास से शुक्लजी का इतना अधिक ममत्व है कि उनके जैसा संतुलित और तथ्य-निरूपक समीक्षक भी भावुक हो उठता है।

Scanned by CamScanner

संभावित या कल्पित रूप-विधान के अंतर्गत प्रत्यक्ष देखे या जाने पदार्थों के आधार पर नवीन वस्तु-व्यापार-विधान खड़ा किया जाता है। कल्पना कवि को अपार शक्ति और क्षेत्र प्रदान करती है। परंतु इसके उपयोग में अपने कदम मज़बूती से ज़मीन पर रखने होते हैं। कल्पना का काम है यथार्थ को ही सजाना-सँवारना। कल्पना हम 'वितथीकरण' के द्वारा करते हैं। शुक्लजी ने इसी बात को यों कहा है, 'जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आजकल के लोग 'कल्पना'। (वही, पृ.21)

कल्पित रूप और प्रत्यक्ष या ज्ञात रूप में मार्मिक साम्य का सूत्र होता है। इस सूत्र के न रहने या टूट जाने से 'कल्पना' तमाशा बनकर रह जाती है। ऐसे कल्पित विधान को शुक्लजी ने लोकोत्तर विधान करने वाली कल्पना कहा है और उसपर कठोरतम प्रहार किया है। शुक्लजी के अनुसार कल्पना जिस साम्य पर लाई जाए वह आभ्यन्तर प्रभाव साम्य पर आधारित होनी चाहिए। प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थों का संबंध मार्मिक और घनिष्ठ होना चाहिए। अप्रस्तुत ऐसा हो जो वांछित प्रभाव उत्पन्न करके भाव को प्रगाढ बना सके। मुख यदि कमल के समान कहा जाता है तो इसलिए कि सुंदर मुख देखने से हमारे मन पर वैसा ही सुखद प्रभाव पड़ता है जैसा कि कमल देखने से। मन पर पड़ने वाली इसी प्रभाव समानता को शुक्लजी आभ्यन्तर प्रभाव साम्य कहते हैं। जिनमें यह दिखलाई पड़ा उन कविताओं की उन्होंने प्रशंसा की।

शुक्लजी के मत में मूल और महत्वपूर्ण है - प्रस्तुत भाव। अप्रस्तुत या तो प्रस्तुत का पोषण करे या उसके सदृश हो। वस्तुतः सदृश्य-विधान से भी पोषण ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूप-विधान में भी शुक्लजी प्रस्तुत को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह मत भी उनकी वस्तुवादी और ऐहिक चिंतन प्रणाली की संगति में है।

शुक्लजी ने समीक्षा-सिद्धांत साहित्य रचनाओं के आधार पर स्थापित किए हैं। अतः उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा में संगति है। वे जहाँ सिद्धांत प्रतिपादन में प्रवृत्त होते हैं, वहीं प्रचुर उदाहरण और उद्धरण देकर अपने कथन को प्रमाणित कर देते हैं। उनके सिद्धांत ऊपर से थोपे हुए नहीं हैं बल्कि साहित्य के रसास्वादन के माध्यम से प्राप्त किए हुए निष्कर्ष हैं। वे व्यवहार से सिद्धांत पर पहुँचते हैं। साहित्य का पारायण करके निगमनात्मक पद्धति से जो सूत्र उन्होंने खोज निकाले हैं, वे ही उनके समीक्षा सिद्धांत हैं। यह पद्धति आधुनिक और वैज्ञानिक है इसलिए शुक्लजी आधुनिक और वैज्ञानिक समीक्षक हैं। पूर्व और पश्चिम के प्राचीन काव्य-चिंतकों की मान्यताओं से शुक्लजी ने जो अपना मतभेद प्रकट किया है, वह भी रचनाओं के आधार पर ही। समीक्षक के लिए सहृदय होना अनिवार्य है। सच्चे समालोचक की बहुत बड़ी पहचान यह है कि आलोच्य कृतियों के उत्कृष्ट स्थलों को वह पहचान सका है या नहीं। महत्वपूर्ण समीक्षक समकालीन रचनाकारों को निर्देश देता है, उन्हें प्रभावित करता है और कालजयी क्लासिकी साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करता है। प्राचीन साहित्य की वह युगानुकूल व्याख्या करता है, उनमें अपने युग की दृष्टि से देखे हुए सौंदर्य को ढूँढ निकालता है और इस तरह उन्हें वह फिर से संदर्भवान बनाता है। महान् साहित्य इसी प्रकार जातीय चिंतन और भावना का अंग बना रहता है। पं.रामचन्द्र शुक्ल ने प्राचीन साहित्य में से समीक्षा के लिए तुलसीदास, सूरदास, और जायसी को चुना। संस्कृत के कवियों में उन्हें वाल्मीकि, भवभूति और कालिदास विशेष रूप से प्रिय थे। उनके काव्य-चिंतन की प्रणाली को विकसित करने में उनके प्रिय कवियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। करुणा और प्रेम का जो विशद विवेचन उन्होंने किया है, शीलदशा की काव्य में जो उपयोगिता आँकी है, आनंद की साधनावस्था और सिद्धावस्था की जो कल्पना की है तथा काव्य में लोकमंगल का जो महत्व स्थापित किया है वह सब अपने प्रिय कवियों की व्याख्या करने के उपक्रम में। गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास की आलोचना करते हुए प्रसंगवश उन्होंने भक्ति की भी व्याख्या की है। भक्ति की जो व्याख्या उन्होंने की है वह लौकिक है। शुक्लजी करुणा और प्रेम को दो स्वतंत्र भाव मानते थे। सूरदास को उन्होंने प्रेम का - जिसके अंतर्गत पालन और रंजन आते हैं, कवि माना है और तुलसीदास को करुणा का - जिसके अंतर्गत लोकरक्षा का भाव आता है, कवि माना है।

शुक्लजी के अनुसार प्रेम को ही अपने काव्य के लिए चुनने के कारण सूरदास आनंद की साधना या प्रयत्नावस्था के नहीं, सिद्धावस्था के कवि हैं। शुक्लजी ने सुझाया है कि कृष्ण चरित्र में भी करुणा नामक बीज भाव के प्रसार का पर्याप्त अवकाश था किंतु सूर की वृत्ति इस ओर नहीं रमी है। सूरसागर के उत्कृष्ट स्थल वे हैं जहाँ कवि ने बालकृष्ण की लीलाओं का और गोपियों के संयोग शृंगार का वर्णन किया है। बाल लीला वर्णन में सूर काव्य की उत्कृष्टता का रहस्य स्वाभाविकता है। यह वर्णन लोक-सामान्य की भावभूमि पर किया गया है। सूरदास के काव्य की मार्मिकता का दूसरा रहस्य यह है

Scanned by CamScanner

कि कृष्ण की लीलाओं का क्षेत्र प्रकृति का विस्तृत प्रांगण है, घर का कोई कोना नहीं। शुक्लजी ने लक्षित किया है कि, 'कवियों को आकर्षित करने वाली गोप-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है - प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश।' (सूरदास, पृ.79)

शुक्लजी को सूर का संयोग वर्णन अच्छा लगता है क्योंकि बाल-लीला के समान कृष्ण की प्रेम-लीला भी प्रकृति और कर्मक्षेत्र की पृष्ठभूमि में वर्णित होती है। सच्चा प्रेम साहचर्य-जनित होता है, आकस्मिक या दुर्घटना के रूप में नहीं। शुक्लजी का यह मानदण्ड सूर के प्रेम-लीला वर्णन पर घटित होता है, यों कहें कि सूर का संयोग वर्णन शुक्लजी की कसौटी पर खरा उतरता है।

संयोग-वर्णन की भाँति सूर के वियोग-वर्णन में से भी शुक्लजी ने ऐसे ही अंशों को पसंद किया है जहाँ कर्मरत् सहज जीवन के बीच में वात्सल्य और वियोग की मार्मिक झलक दिखाई पड़ती है।

शुक्लजी सूरदास की सीमाओं की ओर भी संकेत करते हैं। सूरदास जब कृष्ण की दैवीशक्ति को प्रकट करने के लिए या रूप वर्णन करने के लिए 'दूर की कौड़ी' लाते हैं या प्रत्यक्ष जगत् की परिचित वस्तुओं को छोड़कर अदेखी या असाधारण वस्तुओं को लाकर उपमानों की माला पिरोने लगते हैं तो वे कवि-रूप में चूकने लगते हैं।

सहज और स्वाभाविक उक्तियाँ अनलंकृत होने पर भी मार्मिक व्यंजना करने में समर्थ होती हैं। सूरदास की ऐसी उक्तियों की प्रशंसा करते हुए शुक्लजी ने उनकी मार्मिक व्याख्या की है। 'नंद! ब्रज लीजै ठोंकि-बजाय' पंक्ति की व्याख्या करते हुए शुक्लजी लिखते हैं कि 'ठोंकि-बजाय में कितनी व्यंजना है। तुम अपना ब्रज अच्छी तरह सँभालो, तुम्हें इसका गहरा लोभ है, मैं जाती हूँ। एक-एक वाक्य के साथ हृदय लिपटा हुआ आता दिखाई दे रहा है। एक वाक्य दो-दो तीन-तीन भावों से लदा हुआ है। श्लेष आदि कृत्रिम विधाओं से मुक्त ऐसा ही भाव-गुरुत्व हृदय को सीधे जाकर स्पर्श करता है। इसे भाव-शबलता कहें या भाव-पंचामृत, क्योंकि एक ही वाक्य 'नंद! ब्रज लीजै ठोंकि-बजाय' में कुछ निर्वेद, कुछ तिरस्कार और कुछ अमर्ष इन तीनों की मिश्र व्यंजना - जिसे शबलता ही कहने से संतोष नहीं होता - पाई जाती है।' (सूरदास, पृ.188)

तुलसीदास शुक्लजी के प्रिय क्या आदर्श कवि हैं। यह निर्णय कर पाना कठिन है कि तुलसी ने उनके आलोचनात्मक मानदण्ड के निर्माण में सहयोग दिया है या तुलसी इस मानदण्ड पर खरे उतरे हैं। इस तथ्य का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि करुणा के विधान के अवकाश के कारण शुक्लजी काव्य में प्रबंधत्व को अधिक महत्व देते थे। प्रबंधकार की कसौटी वे मार्मिक प्रसंगों की पहचान और जीवन की विविधता का व्यापक रूप में चित्रण को भी मानते थे। इन सूत्रों को आधार बनाकर वे लिखते हैं - 'हिंदी के कवियों में इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामीजी में है जिसके प्रभाव से रामचरितमानस उत्तरी भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है।' (तुलसीदास, पृ.84)

इसमें क्या संदेह कि गोस्वामी तुलसीदास की प्रतिष्ठा अत्यंत लोकप्रिय कवि के रूप में शताब्दियों पूर्व हो चुकी थी। लेकिन किसी काव्य को अच्छा समझना अथवा महसूस करना एक बात है और उसकी महानता की व्याख्या करना दूसरी बात है। शुक्लजी ने गोस्वामी तुलसीदास की महानता और लोकप्रियता की व्याख्या की और हमें उस रहस्य से अवगत करा दिया जिसके कारण उनका काव्य इतना लोकप्रिय और महान है। उनके इस कार्य से पाठकों ने तुलसी के काव्योत्कर्ष को लेकर महसूस ही नहीं किया बल्कि समझने भी लगे। शुक्लजी ने तुलसी के काव्य को अपने युग-बोध और युग की भाषा में व्याख्यायित किया या उसकी युगानुकूल पुनर्व्याख्या की। तुलसी को आधुनिक जीवन के लिए संदर्भवान बनाया।

शुक्लजी ने राम-कथा के भीतर अनेक अत्यंत मर्मस्पर्शी स्थलों का उल्लेख किया है। इनमें भी सबसे अधिक मर्मस्पर्शी उन्हें राम-वनगमन प्रसंग लगता है। क्योंकि इसके द्वारा राम जीवन के व्यापक कर्म-क्षेत्र में उतरते हैं। राम-वनगमन उनके लोक-रक्षा में प्रवृत्त होने की भूमिका है। इसी मनोहर दृश्य में करुणा के बीज भाव का वपन होता है। इस दृश्य की मर्मस्पर्शिता का कारण बताते हुए शुक्लजी लिखते हैं, 'एक सुंदर राजकुमार के - छोटे भाई और स्त्री को लेकर - घर से निकलने और वन-वन फिरने से अधिक मर्मस्पर्शी दृश्य क्या हो सकता है?' (वही, पृ.79) सौंदर्य, शील और शक्ति से युक्त राम का यह रूप करुणा से प्रेरित लोक-रक्षार्थ युद्ध में राम का प्राक्-रूप है।

Scanned by CamScanner

तुलसी का रामचरितमानस एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें शुक्लजी को करुणा का सम्यक् प्रसार दिखलाई पड़ा, जिसमें जीवन अपनी संपूर्ण विविधता में अंकित हुआ है। शुक्लजी के प्रिय भाव लोकमंगल की प्रतिष्ठा उसमें नाना विषम परिस्थितियों के बीच - उनकी परिणति के रूप में होती है। शुक्लजी जिस प्रकार नरेतर बाह्य प्रकृति का विस्तृत रूप में देखना चाहते थे उसी प्रकार उन्हें नर प्रकृति का विस्तार और प्रसार भी रुचिकर था बशर्ते उसके केंद्र में लोक-मंगल की भावना अवश्य प्रतिष्ठित हो। सामाजिक मर्यादाओं का पालन, औचित्य, संकोच, विनम्रता और लोकवादिता के आदर्शों का जितना सम्यक् निरूपण मानस में हुआ है उतना किसी अन्य हिंदी काव्य में नहीं। मानस के राम सद्गुणों से युक्त लोक-रक्षा में प्रवृत्त शील-दशा को प्राप्त नायक हैं। सीता राम के साथ बीहड़ पथ पर चलने वाली साधारण स्त्री हो गई हैं। मानस के लोकमंगल भाव के प्रेरक रूप को शुक्लजी ने खोजा है, उसकी युगानुकूल व्याख्या की है। इसीलिए कहा गया है कि मानस और तुलसी को उन्होंने हमारे लिए संदर्भवान् बनाया है।

तुलसीदास और सूर तो पहले से ही अत्यधिक लोकप्रिय कवि थे। सूफी कवि जायसी उतने लोकप्रिय नहीं थे। वे सूफी थे। आज हिंदी साहित्य के इतिहास का पाठक मुस्लिम कवि जायसी को सूर-तुलसी की कोटि में पाता है। जायसी मुस्लिम सूफी कवि थे, लेकिन शुक्लजी ने उन्हें भक्तों की कोटि में परिगणित किया है। केवल एक यही तथ्य उनके हृदय की विशालता और धर्म-निरपेक्षता को प्रकट करने को बहुत है। एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में अंतर दिखाते हुए शुक्लजी ने सूफियों को अद्वैती भक्तों के निकट बताया। सूफी कवियों के विषय में शुक्लजी ने लिखा है कि 'इनकी रचनाओं के द्वारा हिंदू और मुसलमानों में भावात्मक संबंध स्थापित हुए। इन रचनाओं में प्रकट हुआ कि जिस प्रकार एक मत वालों के हृदय में प्रेम की तरंगें उठती हैं उसी प्रकार अन्य मत वालों के हृदय में भी। बाह्य विभेद रहने पर भी मनुष्य मात्र में भावना के स्तर पर समानता है। यदि ऐसा न होता तो साहित्य सार्वजनिक और सार्वदेशिक न होता। सूफी कवि 'प्रेम की पीर' की व्यंजना करते थे। भारत में जो कहानियाँ प्रचलित थीं, उन्हीं के आधार पर काव्य-रचना करके सूफियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त द्वार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप-रंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।' (जायसी ग्रंथावली की भूमिका, 8वाँ संस्करण, पृ.2)

पद्मावत प्रेम-काव्य है। उसमें नायक करुणा का भाव लेकर लोक-रक्षार्थ कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त नहीं होता है, लेकिन यह अवश्य है कि प्रेम विघ्न-बाधामय, कंटकाकीर्ण मार्ग पर संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता है। लोक-रक्षार्थ न सही लेकिन विस्तृत कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त होने का अवसर नायक को मिला है। पद्मावत का कथानक घटना-संकुल है। इसकी गहरी अनुभूति उत्पन्न करने के लिए जैसी परिस्थितियों की आवश्यकता पड़ती है वे पद्मावत में विद्यमान हैं।

जायसी और सूफी कवियों की जिस विशेषता ने शुक्लजी को सबसे अधिक आकृष्ट किया है वह है प्रकृति वर्णन। सूफी कवियों ने प्रकृति के साथ जिस तादात्म्यगत अनुभूति की व्यंजना की है वह मध्यकालीन ही नहीं, समूचे हिंदी साहित्य में दुर्लभ है। शुक्लजी का कहना है कि जायसी अनुमान या ऊहा के आधार के लिए ऐसी वस्तु सामने लाते हैं, जिसका स्वरूप प्राकृतिक है जिससे सामान्यतः सब लोग परिचित होते हैं।

नागमती के विरह-वर्णन को शुक्लजी ने हिंदी में अद्वितीय कहा है। जिसमें सीता की भाँति नागमती का 'रानीत्व' छूट गया है और महलों में रहने वाली रानी साधारण नारी की भाँति वन-वन बिलख रही है। शुक्लजी ने कविता के विषय में लिखा है कि वह हमें 'लोक-सामान्य भावभूमि' पर खड़ा कर देती है। यह सामान्य भूमि शुक्लजी की रुचि की कसौटी है।

शुक्लजी के व्यापक अध्ययन का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यह देखकर थोड़ा आश्चर्य ही होता है कि रिचर्ड्स की पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज़्म' के प्रकाशित होते ही इतनी जल्दी उन्होंने न केवल पढ़ ली, बल्कि हिंदी साहित्य के संदर्भ में उनके विचारों को उद्धृत करते हुए उनका उपयोग किया। वाल्ट व्हिटमैन, विलियम डिकन्सन, कमिंग्ज़ जैसे आधुनिक कवियों की प्रासंगिक समालोचना की। शुक्लजी के विषय में डॉ.नामवर सिंह का यह कथन ठीक लगता है कि हिंदी आलोचना केवल उनके लेखन से विश्व-समालोचना के समकक्ष हुई। चाहे प्राचीन साहित्य हो चाहे आधुनिक, उनकी पकड़ इतनी मज़बूत और दृष्टि इतनी मर्म-भेदिनी है कि वह चूकते नहीं। उनकी दृष्टि और उनके मूल्यांकन से मतभेद हो सकता है किंतु कोई कवि या साहित्यकार यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि शुक्लजी ने उसकी आलोचना बिना समझे कर दी है।

Scanned by CamScanner

शुक्लजी ने श्रीधर पाठक और रामनरेश त्रिपाठी को सच्चे अर्थों में स्वच्छंदतावादी कवि माना है। उनके अनुसार इन कवियों में स्वच्छंदता का स्वाभाविक विकास है। वे अंग्रेज़ी स्वच्छंदतावादी कविताओं के अंधानुकरण को गलत मानते हैं क्योंकि रीतिकाल या भारतेंदु काल के अंत में जो परिस्थिति थी वही परिस्थिति स्वच्छंदतावाद के समय इंग्लैंड की नहीं थी। शुक्लजी का कहना है कि नए कवियों (छायावादी कवियों) को अपनी काव्य परंपरा का विकास करना चाहिए था। वे छंद, लय आदि के विषय में पुरानी परंपरा को ही आगे बढ़ाने के पक्ष में थे। खड़ी बोली पद्य के लिए सुंदर लय और चढाव-उतार के कई नए ढाँचे निकालने के लिए श्रीधर पाठक की उन्होंने प्रशंसा की थी। द्विवेदीयुगीन काव्य की सीमाओं को लक्षित करते हुए उन्होंने लिखा कि उसमें, 'कल्पना का रंग भी बहुत कम या फीका रहता था और हृदय का वेग भी खूब खुलकर नहीं व्यंजित होता था।' शुक्लजी के अनुसार यह कमी मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कविताओं से पूरी होने लगी थी।' अतः हिंदी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्हीं को - विशेषतः श्री मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को समझना चाहिए। ' (हिं.सा.इ., पृ.650)

शुक्लजी छायावाद के आध्यात्मिक रहस्यवादी रूप के विरोधी थे। वे ऐसे रहस्यवाद को काव्य के क्षेत्र के बाहर की चीज़ समझते थे। हिंदी के छायावादी आंदोलन को उन्होंने बाहर का अंधानुकरण माना है। उनके अनुसार, स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर पाश्चात्य ढाँचे के आध्यात्मिक रहस्यवाद का प्रभाव था। 'इस वाद के आने से हिंदी के नए कवि एकबारगी उधर झुक पड़े।' - क्यों झुक पड़े इसपर उन्होंने विचार नहीं किया है।

छायावाद से शुक्लजी की शिकायत का मुख्य कारण था 'अर्थभूमि के विस्तार की ओर दृष्टि न जाना' और विभाव पक्ष का शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह जाना। परवर्ती काव्य में जब छायावाद के कवियों ने सामाजिकता के दबाव से जीवन और जगत की सहज बातों को भी अपने काव्य में चित्रित किया तो शुक्लजी ने उनकी प्रशंसा की।

शुक्लजी ने आभ्यंतर प्रभाव-साम्य के आधार पर अप्रस्तुत की योजना को छायावाद की बहुत बड़ी विशेषता माना है। इस आधार पर शुक्लजी ने छायावादी पदावली की 'जितनी स्पष्ट और निश्चित व्याख्या की है, वैसी फिर किसी ने नहीं की जैसे धूल की ढेरी (असुंदर वस्तु), मधुमय गान (गाने के विषय अर्थात् सुंदर वस्तुएँ), मर्म-पीड़ा के हास, हास-विकास, समृद्धि, विरोध-वैचित्र्य के लिए व्यंग्य-व्यंजक संबंध को लेकर लक्षण, मर्म-पीड़ा के हास - मेरे पीड़ित मन आधार-आधे संबंध को लेकर' इत्यादि।

शुक्लजी छायावाद को काव्य-शैली मात्र मानते हैं। इसके कथ्य या वस्तु में कोई नवीनता है, यह वह नहीं मानते। उनके इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे छायावादी वस्तु और मुकुटधर पाण्डेय या मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि स्वाभाविक स्वच्छंदतावादी कवियों की काव्य-वस्तु में कोई खास अंतर नहीं मानते। शुक्लजी की इस मान्यता का कई परवर्ती आलोचकों ने विरोध किया।

Scanned by CamScanner